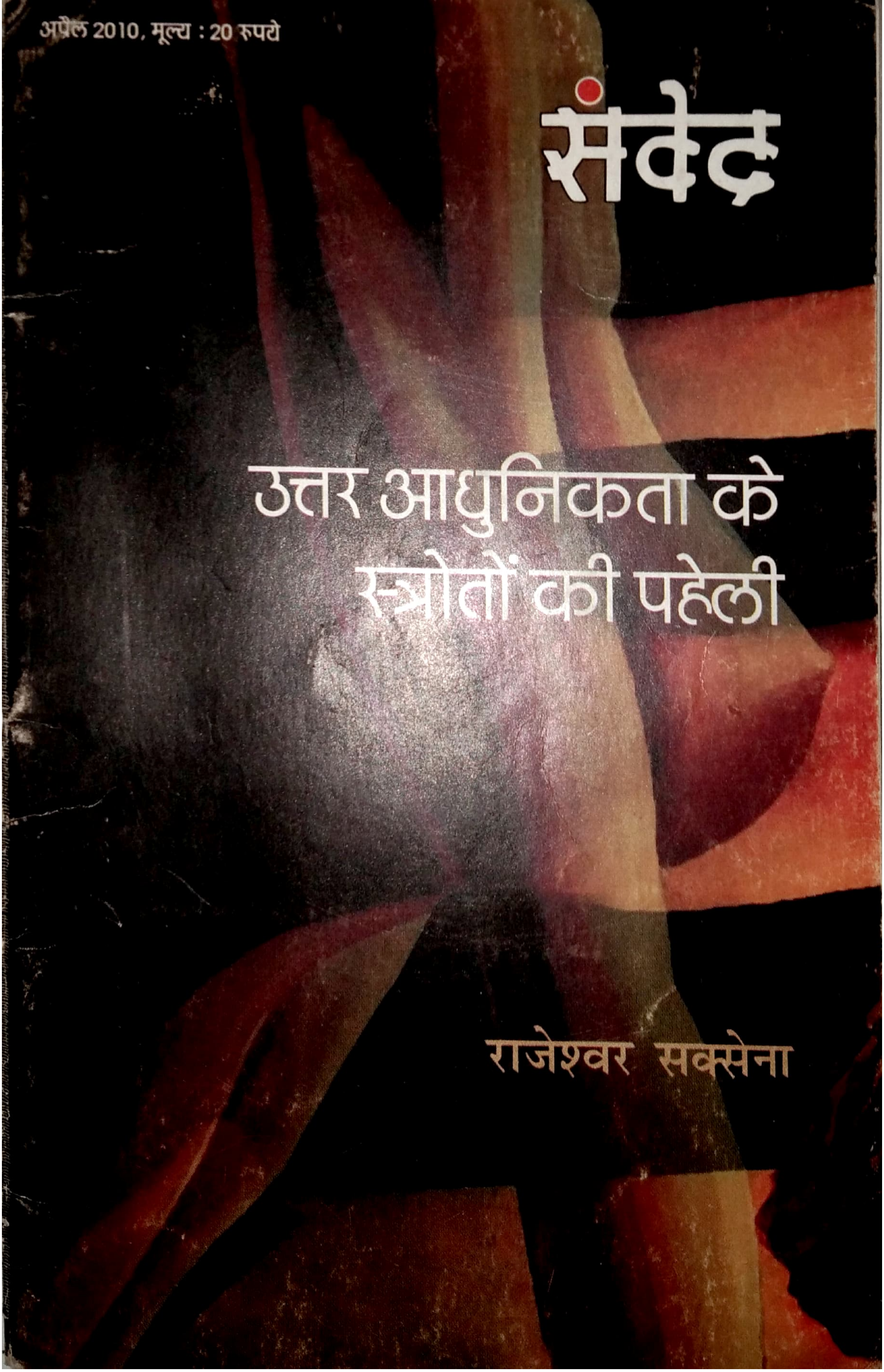
अप्रैल 2010, मूल्य : 20 रुपये

संवेद



उत्तर आधुनिकता के स्त्रोतों की पहेली

राजेश्वर सक्सेना

संवेद
अप्रैल 2010

उत्तरआधुनिकता के स्रोतों की पहेली

कांट के तर्कबुद्धिवाद का प्रपंच

राजेश्वर सक्सेना

अनुक्रम

सम्पादक
किशन कालजयी

संवेद

वर्ष 2, अंक 4, अप्रैल 2010

सम्पादक : किशन कालजयी
सहसम्पादक : राजीव रंजन गिरि
सम्पादकीय सहयोग : नीरू अग्रवाल
पुखराज जाँगिड़
नेहा

प्रबन्ध सम्पादक : कुमकुम कुमारी

सम्पादकीय सम्पर्क
एफ-3/78-79
सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली-110089
फोन : 011-27891526
samvedmonthly@gmail.com

आवरण: देव प्रकाश www.deoprakash.blogspot.com

स्वामी, प्रकाशक व मुद्रक कुमकुम कुमारी द्वारा
बी-3/44, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली-110089
से प्रकाशित और लक्ष्मी प्रिंटर्स, 556, जीटी रोड,
शाहदरा, दिल्ली-110032 से मुद्रित।

मूल्य : बीस रुपये
वार्षिक सदस्यता : तीन सौ रुपये
आजीवन : पाँच हजार रुपये

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा से आर्थिक सहयोग प्राप्त
सम्पादन/संचालन : अवैतनिक/अव्यावसायिक



राजेश्वर सक्सेना

जन्म : 1938, पुसगंवा, जिला बदायुं, (उ.प्र.)

शिक्षा : बी.ए. बरेली कॉलेज, बरेली। एम.ए. और पी.एच.डी. सागर विश्वविद्यालय सागर। 1963 से 1997 तक बिलासपुर के एक महाविद्यालय में अध्यापन कार्य। 1954 से 1972 तक लोहियावाद से सक्रिय जुड़ाव। इसके बाद मार्क्सवाद का अध्ययन-चिंतन।

प्रकाशन : छायावादः स्वरूप और व्याख्या, भारतीय काव्य-चिंतन, शैव सौन्दर्य बोध और काव्य दर्शन, रचना का इतिहास-दर्शन, इतिहास-विचारधारा और साहित्य, परम्परा का द्वन्द्व और आलोचना, काव्य के जीवनदायी द्वन्द्व और रामचन्द्र शुक्ल, उत्तर आधुनिक सौन्दर्यशास्त्र और द्वन्द्ववाद, उत्तर आधुनिकता और द्वन्द्ववाद, वित्तीय पूँजी और उत्तरआधुनिकता, विज्ञान का दर्शनः फ्रैडरिड एंगेल्स का योगदान।

सम्पर्क : एल.आई.जी. 52, नेहरू नगर, बिलासपुर–495001 (छत्तीसगढ़)

मोबाईल : 09425546246

प्रारम्भ

आधुनिकता का अन्तर्विरोध ज्ञान के द्वन्द्वात्मक तर्क और ज्ञान के अराजकतावादी तर्क का था। उत्तरआधुनिकता में दोनों विखंडित हो गये हैं। अब ज्ञान का भाषा मोड़वादी तर्क पहलकारी हो गया है। नतीजतन विचार को वक्तृता में घटा देने की एक नयी परिस्थिति पैदा हो गयी है। ऐसे भाषा मोड़वाद को शीतयुद्ध के एकादमि म का एक नया अध्याय माना जा सकता है।

ये निबन्ध वस्तु और विचार की परम्परा तथा ध्वनि और विचार की परम्परा की द्वन्द्वात्मक संगति में हैं। मेरी यह स्पष्ट मान्यता है कि मार्क्सवाद क्रान्तिकारी है क्योंकि गुणात्मक में बने रहने के बीज सूत्र उसमें हैं। सीखने की और रूपांतरण की प्रक्रिया में होते हुए ही वंशक्रम (Genealogy) और इतिहास के तथा ऐतिहासिक आवश्यकता और प्रैग्मैटिक आवश्यकता के अंतर्विरोधों को खोला जा सकता है। यह कि काँट के तर्क बुद्धिवाद की पहेली अकादमिक नहीं है, वह तो आधुनिकता और उत्तरआधुनिकता के गठन में मूलभूत है।

—राजेश्वर सक्सेना

उत्तरआधुनिक विज्ञान में कांटवाद की व्याप्ति

रूपरेखा - कांट का तर्कबुद्धिवाद : ''बोध और बुद्धि में भेद है'' की दृष्टि - ऐसी दृष्टि से ही सभी तरह के विज्ञानों, कला, साहित्य, आलोचना, संस्कृति आदि में 'विचारधारा' के सवाल को अमूर्त और निरपेक्ष बनाया गया है। विचारधारा को ऋणात्मक, अस्वीकारात्मक और नकारात्मक प्रतिफलों (Negative returns) के खाते में डाल दिया गया है। यहाँ तक कि प्रबोधन का विचार भी हरमैन्युटिकल होकर रह गया है।

'प्रागानुभविक' (a-priori) 'वस्तुनिजरूप' (thing in itself) जैसी ज्ञानकोटियों की वजह से सत्तामीमांसा (ontology) आत्मवादी विचार की होकर रह गयी है। 'सापेक्ष' का हर विचार ही शुद्ध मानसिक संरचनाओं का विषय होकर रह गया है।

कांट का व्यावहारिक तर्क (Practical reason) आधुनिक में तो बौद्धिक व्याख्याओं वाला और उत्तरआधुनिक अर्थमीमांसा में विमर्शों (Discourses) वाला होकर रह गया है।

ध्वनि और विचार की परम्परा में, 'सस्यूरियन' संकेत और संकेतित में जो यादृच्छिक है, एककालिक है, असकारात्मक है, वह कांटियन रेशनल जैसा ही है। ("Saussure's language...is so far Kantian in style, rather than empiricist". J. Passmore, Recent Philosophers, p. 29)

हमारा कहना यह है - विश्व इतिहास की गति और प्रक्रिया में औद्योगिक क्रान्ति की सत्ताविषयक ज्ञानमीमांसा के अवस्थानुरूप रूपांतरण को समझते हुये जीवन के चरितार्थ की दृष्टि बनायी जाए। चरितार्थ की 'विशिष्टि' का संज्ञान लिया जाए। नृविज्ञान के, नृजातिविज्ञान के, वंशक्रम के विचार से बाहर निकलकर सीखने और रूपांतरित होने की इतिहास-प्रक्रिया में आश्वस्त हुआ जाए।

(1)

(1) कांटियन 'शुद्ध-बुद्धि' और 'व्यवहार-बुद्धि' के रेशनलिज़्म से बाहर निकलना होगा। आज के विज्ञान और विज्ञान के दार्शनिक मंतव्यों में कांटवाद अपनी सम्पूर्ण विरासत के साथ नकारात्मक में आ गया है।

(2) यह कांटवाद है जिसने 'जीवन के दर्शन' को 'विचार के दर्शन' में घटाकर रख देने का तर्क रचा है। कांट का रेशनलिज़्म गैर-रूपांतरणशील है, वह गैर-वस्तुवादी है। उसमें अनुभववाद की भूमिका क्षीण है।

(3) कांट की ज्ञानकोटियों से अस्तित्व की गति और प्रक्रिया के निरपेक्ष-अर्थग्रहण का मार्ग खुलता है। यह कि स्वायत्ता के विचार में, यादृच्छिक और स्वतःसिद्ध के विचार में, स्वतंत्रता, नैतिकता और औचित्य आदि के विचार में कांटियन और नव्यकांटियन तर्कबुद्धिवाद का गहरा प्रभाव दिखाई देता है।

(4) शीतयुद्ध के एकादमिज़्म की हर तालिका में, हर पाठ्यक्रम में, हर विनियोग और हर अनुप्रयोग में कांट के तर्कबुद्धिवाद की प्रेरकता को समझा जा सकता है। कहना चाहें तो यह कह सकते हैं कि अपने एक विशिष्ट दार्शनिक अर्थ में शीतयुद्ध के विचार का व्यूहन ही कांट की ज्ञानकोटियों की नई-नई व्याख्याओं के द्वारा किया गया है।

कौन नहीं जानता है कि 'सिद्धांत और व्यवहार' की तथा 'अनिवार्यता और संयोग' की हर वैज्ञानिक व्याख्या में नवकांटवादियों का दबदबा क़ायम रहा है। कौन नहीं जानता कि आधुनिक 'प्रबोधन' पर तो नवकांटवादियों का जैसे वर्चस्व ही क़ायम रहा है। कौन नहीं जानता कि सोशल डैमोक्रेसी के राजनीतिक अर्थशास्त्र के नये नये आख्यान कांटियन-नव्य कांटियन परिप्रेक्ष्य वाले हैं। कौन नहीं जानता कि आधुनिक विज्ञान के दर्शन का प्रथम अध्याय कांट (न्युटन की भौतिकी और कांट) से शुरू होता है। कौन नहीं जानता कि क्वांटम-भौतिकी के दार्शनिक मंतव्यों का गठन भी कांटियन-नव्य कांटियन से बाहर नहीं है। कौन नहीं, जानता कि एडम स्मिथ के 'लैसेसफ़ेयरेवाद' की, 'उन्मुक्त प्रतियोगिता' के विचार की और 'एक अदृश्य हाथ' की जितनी भी प्रैग्मैटिक दृष्टियाँ हैं, वे सभी कांटियन-नव्यकांटियन से ही अपनी उत्प्रेरकता बनाये रखती हैं। 'प्रैग्मैटिज़्म', जो अपने एक विशेष अर्थ में 'बाज़ार की व्यावहारिक विशेषताओं' का विचार-दर्शन है, वह अपने उत्तरआधुनिक परिदृश्य में कांटियन-नव्यकांटियन ज्ञानकोटियों की बैसाखियों पर ही टिका हुआ दिखाई देता है।

कि आज भी ऐसे शीतयुद्धवादी एकादमिज़्म की ज़रूरत बनी हुई है। शीतयुद्धवादी एकादमिज़्म के नये नये संस्करणों में कोई कमी नहीं आयी है। जिसे हम आज उत्तरआधुनिक कहते हैं, 'उत्तर आधुनिक उग्र' कहते हैं -1968 में फ्रांस के छात्र आन्दोलन का नारा 'व्यावहारिक बनो, असंभव को करो' (Be practical, Do impossible) की जो 'प्रैग्मैटिक्स' थी, (Pragmatics is the philosophical discipline that deals with the subjective - inter-subjective and conditions of understanding meaning and of the formation of consensus in the ideal, unlimited community of inquirers. Peirce already essentially conceived of such a semiotic transformation of *the critique of pure reason*, in the sense of a normative 'Semiotic logic of inquiry. P. 258" After philosophy: End or transformation") (संकेत विज्ञान में क्रिया के एकवचनीय प्रयोग, पसंदगी के संकेत का प्रयोग आदि), उसमें जो अन्-ऐतिहासिक और इतिहास-विरोधी दृष्टि थी, उसमें 'ज्ञान का जो अराजकतावादी दृष्टिकोण' था, उसमें जो 'नहीं धन-अति(वाद)' (Ney-plus-ultra, Rorty) था, उसके स्रोत कांटियन-नीत्शेय्यन में मिलते हैं। एक 'नीत्शेय्यन कांट' और एक फ्रायडियन कांट को उत्तर-आधुनिक विचार और उत्तर आधुनिक वक्तृता में देखा जा सकता है।

सच्चाई यह है कि द्वन्द्ववाद (भौतिक 0 ऐतिहासिक 0) को ध्वस्त करने के वास्ते, विज्ञान के अनुभववादी आधारों की द्वन्द्वात्मकता को ध्वस्त करने के वास्ते शीतयुद्धवाद की, एक के बाद एक नये शीतयुद्धवाद की ज़रूरत बनी ही रहेगी, इसलिये, कांट के तर्कबुद्धिवाद की ज़रूरत भी कभी समाप्त नहीं होगी। उसके नये नये रूपों और नई नई व्याख्याओं की ज़रूरत बनी रहेगी।

(5) जिसे हम औद्योगिक क्रान्ति कहते हैं, वह अपनी अवधारणात्मक रचना में और व्यावहारिक फलन में 'आधुनिक', 'विवेक' और 'प्रबोधन' में रूपांतरण की एक प्रक्रिया भी है। वह मानव-श्रम-सापेक्ष मूल्य-सृजन की प्रक्रिया भी है। श्रम-सापेक्ष मूल्य के वस्तुनिष्ठीकरण की प्रक्रिया भी है।

औद्योगिक क्रान्ति के बाद श्रम की अनुभववादी सत्ता के विज्ञान, अर्थात् 'श्रम के विज्ञान'

के 'व्यावहारक संयोजन' का गठन किया जाने लगा। 'श्रम के विज्ञान' की दार्शनिक कोटियों का गठन किया जाने लगा। 'श्रम की सत्तामीमांसा' को समझा जाने लगा। ऐसे श्रम के विज्ञान से सत्तामीमांसा के प्रत्ययवादी और तत्ववादी विचारों का तेजभंग होने लगा। 'प्रागानुभविक' की और 'वस्तुनिजरूप' की व्याख्याओं का रंग उड़ने लगा। नतीजा यह हुआ कि श्रम के विज्ञान के अस्तित्व में आ जाने से दर्शन ज्ञान की अनुभववादी व्याख्याओं का विषय हो गया। दर्शन और व्यवहार के, व्यावहारिक दर्शन के मौलिक अध्यायों की रचना की जाने लगी। नतीजा यह हुआ कि आधुनिक विज्ञान के दर्शन में प्लेटो के मंतव्यों और प्लैटोनिक विधियों की प्रयुक्तियों, यूटोपियन किस्म की समझदारियों की भूमिका सीमित होने लगी।

अब यह समझ भी पैदा होने लगी कि प्लेटो के प्रभाव की वजह से (बाद में देकार्त और कांट की वजह से भी) औद्योगिक क्रान्ति की सत्ताविषयक ज्ञानमीमांसा कभी भी स्वत्ववान नहीं हो सकी है। वस्तुनिष्ठ यथार्थ की रचना का विचार कभी भी अनुभववादी आधारों के प्रत्यक्ष ज्ञान का नहीं हो सका है। इसी तरह, मानव-श्रम सापेक्ष रूपांतरण (गुणात्मक और उच्चतर रूपों में) की प्रक्रिया, जो मूलतः 'आवश्यकता और स्वतंत्रता' तथा 'आवश्यकता और संभावना' की रचनात्मक प्रक्रिया होती है, वह कभी भी सापेक्षिक ग्रहण का, इस तरह, स्थिति विशेष का, स्थिति निर्धारण का, कुल मिलाकर, ऐतिहासिक चरितार्थ का विषय नहीं हो सकी है। कह सकते हैं कि हमारे आधुनिक में यह प्लैटो है (देकार्त, कांट भी) जिसके प्रभाव से एक 'नई मिथ्या' और एक 'नई मिथ' के दरवाज़े खुल रहे हैं।

औद्योगिक क्रान्ति के बाद 'पुरुषार्थ' की भौतिकवादी व्याख्या के नये नये अध्याय लिखे जाने लगे। 'पुरुषार्थ' में दिक्-काल-सापेक्ष जीवन-गति की 'विशिष्टि' का अर्थ खुलने लगा। 'पुरुषार्थ' के विचार को आनुभविक धरातल पर लाकर देखा-परखा और मूल्यांकित किया जाने लगा। पुरुषार्थ को चरितार्थ किया जाने लगा। यह पुरुषार्थ हमारी सिद्धांत-चेतना का विषय होने लगा। इस प्रकार, जीवन-द्रव्य के ही जटिल और उच्चतर रूपों के उद्घाटन में मूलभूत पदार्थ या भूतद्रव्य के गतिशील, चेष्टायुक्त, उत्कर्षात्मक द्वन्द्व की, 'द्वन्द्वात्मक कैआस', द्वन्द्वात्मक विश्रृंखल, 'द्वन्द्वात्मक विप्लव' की अनंत प्रक्रियाओं का संज्ञान लिया जाने लगा। ('Eternity filled with ever more complex and subtle forms of life and one filled with nothing but base matter'.)

औद्योगिक क्रान्ति के बाद, 'बीईंग', 'बिकमिंग' और 'डुईंग' के विचार में जो 'आदिजात गूढ़ या मौन' था, जो 'तत्वमीमांसीय', 'अनुध्यानिक' था, जो 'ध्यान का तत्ववाद' था, इसके साथ ही जो 'निरपेक्षभाव से ग्रहण' था, निरपेक्ष रूप से ग्रहण' का जो जैस्टाल्ट या आकृतिमूलक था, रूपवाद था, संरचनावाद था, उसके 'निर्गुण-निराकार' में एक प्रकार के 'द्वन्द्वात्मक ज्ञान-मीमांसीय ब्रेक' की लाइन बनने लगी।

तनिक, 'निर्गुण' पद के तत्वमीमांसीय कूट को खोलकर तो देखिये, आपको मालूम हो जाएगा कि 'निर्गुण' इसलिये ज़रूरी है कि 'पंचकोशातीत' का आख्यान बना रहे, कि 'उच्चारण स्वयं में के शून्यवत् का तर्क बना रहे। आधुनिक सत्ताविषयक ज्ञानमीमांसा के विरूद्ध यह निर्गुण-इसलिये ज़रूरी है कि ऋणात्मक की और निषेधात्मक की वकालत को जारी रखा जा सके। निर्गुण-इसलिये भी ज़रूरी है कि 'अभाववाद' की सत्ता को माना जा सके। निर्गुण इसलिये भी कि आदिम मूल प्रवृत्यात्मक भौतिकवाद, प्रकृतिवाद को मानव श्रम से पैदा होने वाली 'क्वालिया' से बाहर या मुक्त रखा जा सके। 'मानव-विचार' की अलग से कोई रचना न हो सके, आदि। 'मानव का, मानव-क्रिया का निरपेक्ष रूप में स्वीकार आज के नये अध्यात्म में, मानव को उसकी 'सक्रियता की मुक्ति' के

विचार वाला भी है। तो यह निर्गुण तो 'स्वत्वहीन स्वत्व' की मिथ और मिथ्या के वर्क्तृत्व की पहेली ही है।

अतः आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से, आधुनिक प्रबोधन के विज्ञान की दृष्टि से सम्पूर्ण आत्मवादी विचार-दर्शन, वह चाहे प्राच्य का हो या मध्य युग का, वह चाहे आधुनिक युग का ही क्यों न हो, वह चाहे भारत का और योरोप अमेरीका का क्यों न हो, अपनी सम्पूर्ण विविधतापूर्ण विरासत में, स्वत्वहीन स्वत्व के उच्चारण का भाष्य भर है।

यहाँ पर यह भी रेखांकित कर देना ठीक है कि आधुनिक विज्ञान के बारे में, प्रबोधन के विज्ञान के बारे में जो दर्जनों दृष्टियाँ हैं, वे प्रत्यक्ष-प्रमाणवादी हैं, तर्कीय प्रत्यक्ष प्रमाणवादी हैं, प्रैग्मैटिक-प्रैग्मैटिज़्म के विचार वाली हैं, भाषा-मोड़वादी लाइन के अनुरूप हैं। ये सभी अनुभववादी आधारों के यांत्रिक और मनोविज्ञानवादी परिप्रेक्ष्यों वाली है। अनुभववादी ज्ञान-संज्ञान के द्वन्द्ववाद को ध्वस्त करने वाली हैं, 'विज्ञान के पार' की खोज खबर वाली हैं। नतीजतन सभी अपनी चरम परिणतियों में 'स्वत्वहीन स्वत्व' के उच्चारण की होकर रह जाती हैं। (प्रसंगवश-बजरंग बिहारी तिवारी का यह कहना कि 'भारतीय साहित्य में स्वत्व की चेतना का आगमन 1857 के बाद होता है।....... ये परिवर्तन संभव होता है स्वानुभव की प्रतिष्ठा से, इससे पहले अनुभव साहित्य रचना के केन्द्र में कभी नहीं रहा था।' (कथादेश, जून, 09) यह कथन सृजनात्मक राजनीतिक चेतना के विकास की संश्लिष्ट दृष्टि के अनुकूल है। यह कथन आधुनिक सत्ताविषयक ज्ञानमीमांसा के एक प्रस्थान बिन्दु की तरह है।)

(6) अंधशक्ति के बने रहने और विज्ञान के शिथिलाव के विचार की पहेली।

औद्योगिक क्रान्ति से घटित होते हुये 'आधुनिक' में 'वस्तु और विचार' की परम्परा के भरपूर और अपेक्षाकृत नई तरह के विकास के बाद भी, विज्ञान और तकनालाजी में द्वन्द्ववादी दृष्टिकोण की बहुविधि प्रयोगशीलता के बाद भी, ज्ञान और व्यवहार के क्षेत्रों में अंधशक्तियों की बढ़त कम नहीं हो सकी है। बाहर और भीतर में ऐसी अनेक प्रकार की अंधशक्तियों की प्रेरकता बनी हुई है। ऐसा भी माना जाता है कि आधुनिक विज्ञान बहुत कारगर साबित नहीं हो सका है। विज्ञान की सार्थकता पर ही शक किया जाने लगा है।

यहाँ पर, एक काम चलाऊ वर्गीकरण के तौर पर प्लैटोनिक स्रोतों का, देकार्तियन स्रोतों (कार्टीज़न लाजिक) का, मनोविश्लेषण के अवचेतनवादी स्रोतों का तथा विज्ञान और तकनालाजी के कथा स्रोतों का सिर्फ़ उल्लेख भर कर रहे हैं।

जहाँ तक प्लेटो के प्रत्ययवाद का सम्बंध है, सो वह, समूची पश्चिमी ज्ञानमीमांसा के मूल स्रोत की तरह है। प्लेटो आज तक अपना प्रभाव बनाये हुये है। यह एक कहावत ही है कि 'जहाँ कहीं भी जाता हूँ, प्लेटो को ही लौटते हुये देखता हूँ।' अपनी समस्त प्रकार की आलोचनाओं के बावजूद, नीत्शे की प्लेटो से घृणा के बावजूद, इस तथाकथित नीत्शेवादी समय में प्लेटोवियन प्रत्ययवाद के नये नये पाठों की रचना में कोई कमी नहीं आयी है। आज के कारपोरेट जीवन के मंतव्यों में प्लेटो और नीत्शे का अतियों से भरा अद्‌भुत मिश्रण मिलता है। 'मनस् दर्शन' (philosophy of mind) की आधुनिक और उत्तरआधुनिक व्याख्याओं में दोनों के अद्‌भुत मिश्रण की उग्रता (radicality) के अनेक नमूनों को देखा जा सकता है।

यद्यपि, आज 'विज्ञान की पद्धति' में और 'विज्ञान की ज्ञान मीमांसा' में देकार्त के योगदान को बहुत महत्व नहीं दिया जाता है। फिर भी, यदि कहीं, ऋणात्मक में होने की ज़रूरत पड़ती है तो 'कार्टिज़न लाजिक' के इस्तेमाल से काम निकाला जाता है। यहाँ पर हम एक उद्धरण देकर अपनी बात पूरी करना चाहेंगे -

"Despite the extraordinary success of mechanistic reductionist molecular biology, there has been a growing discontent in the last twenty years with simple Cartesian reductionism as the universal way to truth in psychology and Anthropology, and specially in Ecology, evolution, neurobiology, and developmental biology where the Cartesian program has failed to give satisfaction, we hear more and more calls for an alternative epistomnological stance. Holistic, structuralist, hierarchical, and systems theories are all offered as alternative modes of explaining the world, as ways out of the cul-de-sacs into which reductionism has led us. Yet all the while, there has been another active and productive intellectual tradition, the dialectical, which is just now becoming widely acknowledged." Richard Levins and Richard Lewontin, "The Dialectical Biology", Preface, Aakar Books, Delhi.

जहाँ तक, विज्ञान के दर्शन में, विज्ञान के प्रयोजन और प्रभाव में कांट के तर्कबुद्धिवाद का मामला है, वह प्लेटो की पहेली से किसी मायने में कम नहीं है। कहना तो यह चाहिये कि प्लेटो की तुलना में कांट अधिक मायावी है।

सब जानते हैं कि कांट की कतिपय ज्ञान कोटियों के अपने शास्त्रीय पाठ हैं। उसकी इन ज्ञान कोटियों का प्रयोग स्वच्छंदतावादी ज्ञानमीमांसा में भी धड़ल्ले से होता दिखाई देता है। आधुनिक मनोविज्ञान के समस्त स्कूलों में, प्रयोगवादी दृष्टियों में, व्यक्तिवाद के दार्शनिक मंतव्यों में और वंशक्रम (genealogy) तथा इतिहास के हर घालमेल में कांट की ज्ञानकोटियों के सहारे नये प्रस्थान बिंदुओं की खोज (invention, not discovery) की जाती रही है। चाहे मनोभाषिकी का विचार हो या उत्तरआधुनिक समय में 'भाषा-मोड़वादी लाइन' की 'ध्वनि-विचार' की पहेली हो, सभी पर, कांट की प्रभाव छाया स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। यदि उत्तरआधुनिक के 'विशेष' का प्रश्न उठाया जाए, तो उत्तरआधुनिक 'विशेष' के विचार में कांट का नीत्शे-उन्मुखन दिखाई देता है।

(Kant is now almost a Nietzschean, an inventor of concepts . . . "Translator's comment. Gilles Deleuze, "Introduction in Kant's Critical Philosophy")

आज के सांस्कृतिक नृविज्ञान में, सौन्दर्यशास्त्र की अवधारणाओं में, ऐतिहासिक भाषा विज्ञान को ध्वस्त करने वाले नये भाषा विज्ञान में, सेमिआटिक्स में, इसी तरह आदिजात, अन्तर्जात और आद्यरूप (innate and primordial) के आख्यानों में तथा वर्कलेय्यन, मैकियन और एवनारिउस के अनुभववाद से लेकर टी.एस. कुह्न और पाल फ़ेयराबेंड के विचारों में कांट की प्रेरकता दिखाई देती है।

अंधशक्तियों का तीसरा स्रोत फ्रायड का 'अवचेतन' है। विज्ञान और अवचेतन के दृष्टिकोण की एक 'मिथ मेकिंग' लाइन भी है। 'मिथीम' के विचार की, 'आकारिक-संरचना' की संरचनावादी नृविज्ञान की एक लाइन भी है। संगीत और भाषा के मनस्गठन की, दोनों की आकारिक संरचना के मनस्गठन की एक लाइन है। इस लाइन के प्रस्तोता जॉक लाकाँ और लेवी-स्ट्रास (दोनों फ्रेंच) हैं। आज तो, इनका एक भरा पूरा निकाय है जो दुनिया भर के नृविज्ञानविदों की प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है। फूकोयामा ने तो अवचेतनवाद को अनुध्यानमूलक (speculative) दर्शन की श्रेणी में रखा है। (see "Our Post Human future")